International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 7 Issue 12, December- 2017
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939 |

जैन साहित्य में यक्ष

डॉ सुदेश कुमारी असिस्टेंट प्रोफेसर
ज्ञान भारती कॉलेज ऑफ एजूकेशन, इन्द्री, करनाल।

प्राचीन साहित्य के विश्लेषण से विदित होता है कि भारतीय लोक में यक्ष जाति एक प्रमुख जाति थी । वैदिक संहिताओं में 'यक्ष' शब्द 'पूजा' व 'यज्ञ' के संदर्भ में आया है । इसके अतिरिक्त यह शब्द ब्राह्मण-ग्रंथों, आरण्यकों, उपनिषदों, गृह्यसूत्रों, रामायण, महाभारत, पुराणों, जातककथाओं, जैन साहित्य तथा परवर्ती लौकिक संस्कृत साहित्य में भी मिलता है ।

महाभारत-पाठ के अनुशीलन तथा कुछ आधुनिक विद्वानों के विवेचन से ऐसा प्रतीत होता है कि 'यक्ष एक जाति थी । यक्ष पाँच प्रमुख प्रजातियों में से किरात प्रजाति के अंतर्गत आते हैं । इन पांच प्रजातियों का विभाजन विद्वानों ने शारीरिक संरचना के आधार पर इस प्रकार से किया है । 1. नीग्रो 2. आग्नेय 3. मंगोल प्रजाति अथवा किरात 4. द्रविड् प्रजाति 5. आर्य प्रजाति

यक्ष जाति हिमालय में अन्य किरातवंशी जातियों अर्थात् गन्धर्व, वानर, ऋक्ष, आदि के साथ रहती थी । यक्ष जाति की विशेषता यह थी कि यह सबसे पहले सभ्य हुई, क्योंकि जब अन्य जातियाँ शिकारी अथवा संग्रहकर्ता की स्थिति तक पहुंची थी, उस समय यह जाति संस्कृति के प्रथम सोपान पर पहुंच चुकी थी । यह जाति वृक्ष कि विभिन्न उपयोगों से परिचित थी । यक्षाधिपति कुबेर को स्वर्ण व इसके उपयोग की जानकारी थी ।

बौद्धों की तरह जैन साहित्य में भी यक्षों की सत्ता को स्वीकारा है। उनके अनुसार भी यक्षों की अवस्था पूर्व में प्रभावशाली नहीं थी जितनी बौद्ध व जैन काल में थी विभिन्न मुख्य जैन ग्रंथों में यक्षों (जक्खों) का वर्णन है ।

'यक्ष' शब्द पालि में 'यक्ख' कहा जाता है जिसकी व्युत्पत्ति पालि व्याख्याकर्त्ताओं के अनुसार √यज धातु से बलि (Sacrifice) देने के अर्थ में हुई है । अत: यजन्ति तत्था (Tattha) बलिं उपहरन्ति ति यक्खा' एवं 'पूजनीय भावतो यक्खो, ति उच्चति । बौद्ध-साहित्य में इनको मानव जाति से नहीं माना गया है और इन्हें देवों के समान उन्नत भी नहीं माना गया है । इन्हें अधिकतर अमानुष कहा गया है एवं देव, राक्षस, दानव, गन्धब (गन्धर्व) किन्नर एवं महोरग आदि के साथ ही इनका वर्णन हुआ है । इन्हें प्रेतों से उच्च माना गया है तथापि कुछ अच्छे प्रेतों को भी यक्ष कहा गया है । कहीं-कहीं पर उनको अमानुष व गन्धर्ब के बीच की श्रेणी में रखा गया है ।

प्राचीन साहित्य में यक्ष नागादि की तरह सामान्य थे परन्तु बौद्ध व जैन साहित्य में इनका महत्त्व इतना बढ़ गया कि वहाँ इनका अत्यधिक वर्णन हुआ है । इसी साहित्य में शक्क (शक्र, इन्द्र) को भी यक्ष कहा है । यहाँ तक कि कुछ काव्यमयी पंक्तियों में बुद्ध को भी यक्ष कहा गया है । ककुद जैसे देवता को भी यक्ष कह

दिया गया । **जयद्दिशजातक** में चन्द्रमा में अंकित चिह्न को भी यक्ख कह दिया गया है । इन सबमें से केवल वैश्रवण के अनुयायी ही वास्तव में यक्ख हैं ।

भगवतीसूत्र में उन देवों के नाम वर्णित हैं जो वैश्रमण कुबेर के आज्ञाकारी थे[1] वे है –

1. पुण्णभद्द
2. माणिभद्द
3. सालिभद्द
4. सुमणभद्द
5. चक्क
6. रक्क
7. पुण्णरक्ख
8. सव्वण
9. सव्वजस
10. समिद्धा
11. अमोह
12. असंत
13. सव्वकाम

उमास्वाति के **'तत्त्वार्थ-भाष्य'**[2] से इनके इन 13 प्रकारों की दूसरी सूची मिलती है –

1. पूर्णभद्र
2. मणिभद्र
3. श्वेतभद्र
4. हरिभद्र
5. सुमनोभद्र
6. व्याप्तिभद्र
7. सुभद्र
8. सर्वतोभद्र
9. मनुष्ययक्षस्
10. वनाहारस्
11. रूपयक्षस्
12. वनाधिपतिस्
13. यक्षोत्तमस्

यह ध्यातव्य है कि अधिकतर यक्षों के नाम का 'भद्र' शब्द से अन्त होता है । 'भद्र' शब्द का अर्थ-कल्याणकारी, उन्नति देने वाला, समृद्धिदाता, दयालु होता है तथा यक्षों के उज्जवल पक्ष को प्रकट करता है।

शाह[3] के कथनानुसार यह एक तरह से जिन्न-पूजा की तरह है जैसा की जैन-ग्रंथ **नायाधम्मकाहाओ** में वर्णन किया है । यहीं पर 'शेलग यक्ष' का वर्णन है जो 'अश्व' आकार का है[4] तथा यह 'रत्न-द्वीप में वन समुदाय में स्थित होता था । कहा जाता है कि इस यक्ष ने दो व्यापारियों को क्रूर राक्षसी के पंजों से बचाया और उन्हें वापस बंगाल के 'चम्पा' नामक नगर में ले गया ।

आवश्यक-निर्युक्ति (487) के अनुसार 'गामाय' नगर में 'विमलेय' यक्ष ध्यान से पूर्व महावीर की पूजा करता है । 'पिण्ड-निर्युक्ति' (445) में कहा गया है समिला नगर के बाहर उद्यान में भवन से सुसज्जित 'मणिभद्र' का आयतन है । जब भी नगर में चेचक का रोग फैलता है वे उसके समीप रक्षा हेतु जाते हैं तथा वह उनकी रक्षा भी करता है तथा इसी के बदले में उपकार-प्रदर्शन हेतु वे मास के आठवें दिन प्रदर्शन करते हैं ।[5]

यक्षों को शिल्पकला में कुशल माना जाता था जो नगर आदि की शिल्प कला में कुशाग्र होते थे । **वासुदेवहिण्डी** (162-163) में वर्णन है कि प्रथम जैन तीर्थंकर ऋषभ की नगरी 'विनीता' कुबेर के द्वारा निर्मित (अथवा उसके द्वारा निर्दिष्ट शिल्पकलानुसार) है ।

हेमचन्द्र की त्रिषष्ठी (1.149-50) के अनुसार इस नगरी के निर्माण के उपरान्त उसे अविध्वंसी कपड़ों आभूषणों, धन व अनाज से भरपूर कर देता है । उनके चरणों के नीचे अपने वाहन (बौने हाथी) होते थे । पूर्वकालीन बड़ौदा से प्राप्त यक्ष-यक्षी की मूर्तियाँ दीदारगंज की यक्षी व परखम यक्ष की मानी जाती है । (जो पटना में Indian Museum में हैं) एवं दूसरी यक्षी की मूर्ति है जो बेसनगर से है । 'पवाया' से प्राप्त यक्षी की आकृति, वह यक्षी आज भी मथुरा में 'मनसा देवी' के रूप में पूजनीय है ।[6] कुमारस्वामी[7] ने इन चारों मूर्तियों का काल मौर्यकाल के आसपास का माना है ।

कुछ पूर्वकालीन यक्षों की मूर्तियाँ में उन्हें पुण्यघट पकड़े हुए दर्शाया गया है । आर.पी. चन्दा के अनुसार[8] जैन लेखों में इस पुण्यघट को धारण करने वाले को जैन तीर्थंकरों का अनुयायी दर्शाया गया है । प्रायशः बाद में पुण्यघट धारण करने वाले यक्ष की सम्मानजनक का प्रतीक बन गया था, क्योंकि इससे पूर्व के यक्षों की जो मूर्तियाँ हैं जिनकी पूजा भी की जाती थी उन्होंने यह धारण नहीं कर रखा है ।[9]

मणिभद्र एवं पूर्णभद्र को 'दो इन्द्र' कहा जाता है तथा इन्हें 'व्यान्तर-देव' यक्ष के वर्ग के माना जाता है तथा इन्हें बलि प्रदान की जाती थी । **स्थानांगसूत्र**[10] के अनुसार दक्षिण के यक्षों का मुख्य अध्यक्ष पूर्णभद्र है तथा उत्तर के यक्षों का अध्यक्ष मणिभद्र है । ये दोनों यक्ष मणिभद्र एवं पूर्णभद्र चम्पा में महावीर को श्रद्धा अर्पित करते थे तथा इनके चैत्य क्रमशः मिथिला व चम्पा नगर के बाहर स्थित थे ।

इसके अतिरिक्त आडम्बर नाम के यक्ष का वर्णन प्राप्त होता है यह जक्ख मतंग जाति (जो नीच मानी जाती थी) का संरक्षक यक्ष था ।

इस तथ्य से ज्ञात होता है कि प्राचीन देवों को जैन-सम्प्रदाय में एकीभूत कर लिया गया । जैसा कि भरहुत के स्तूप के रेलिंग पिलर पर बनी यक्ष व यक्षिणियों की आकृतियाँ दर्शाती हैं कि यहाँ पर इनकी पूजा की जाती रही होगी । यद्यपि इनको इस स्तम्भ पर न्यून दर्जा प्रदान किया गया । इन वर्णनों से ऐसा प्रतीत होता है कि बौद्ध-साहित्य की अपेक्षा जैन-साहित्य में यक्ष संरक्षक रूप में अधिक स्थापित किए गए हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि किसी भी नगर आदि के संरक्षक के रूप में नगर के बाहर अथवा किसी निश्चित स्थल पर उनका निवास स्थान निश्चित किया जाने लगा था । जैन-तीर्थंकरों के संरक्षक के रूप में भी उनका वर्णन हमें प्राप्त होता है । बौद्ध-साहित्य की अपेक्षा जैन-साहित्य में यक्षों की अधिक पुण्य छवि हमें प्राप्त होती है ।

यक्षों की शक्तियाँ व माया :

बौद्ध-काल में यक्षों को मायावी व अत्यन्त शक्तिशाली वर्णित किया गया है । इससे पहले भी हमें वैदिक-काल से उनके असामान्य से स्वरूप का पक्ष प्राप्त होता है । तदुपरान्त महाभारत आदि में भी उन्हें अत्यन्त शक्तिशाली व मायावी दर्शाया गया है । बौद्ध-काल में भी उनका कुछ इसी प्रकार का वर्णन उपलब्ध होता है । जातक-कथाओं में भी उनके इस प्रकार के वर्णन प्राप्त होते हैं । वज्रपाणि यक्ष का आकाश में दहकता हुआ लोहे का मूसल लिए हुए खड़े होने का उल्लेख मिलता है ।[11]

इसके अतिरिक्त यक्षों के द्वारा विभिन्न रूप धारण करने का वर्णन अनेकश: प्राप्त होता है । ऐसा माना जाता है कि वे कोई भी रूप धारण कर सकते हैं ।[12] जातक कथाओं में ऐसे वर्णन बहुश: हैं । मंगलबुद्ध कथा[13] में खरदाठिक नामक यक्ष द्वारा ब्राह्मण का वेश धारण करके एक महात्मा से उसके बच्चे दान में मांगने का वर्णन है ।[14] इसी प्रकार अप्पणककथा[15] में अमानुषकान्तार में रहने वाले यक्ष के अन्य वेष-धारण का वर्णन प्राप्त होता है ।[16] वे मनुष्य आदि का रूप भी कुशलता से धारण कर लेते थे तथा यक्षिणियां अपना सुंदर रूप बनाकर मनुष्यों को लुभा लेती थी ।[17]

उनके असमय ही वर्षा करवाने में, तूफान आदि प्रकट करने में सामर्थ्य से युक्त होने का भी वर्णन प्राप्त होता है तथा वे स्वयं भी आकाश में भ्रमण कर सकते थे ।[18]

यहाँ तक कि अधिकतर उनके घर (आश्रय) भी हवा में माने जाते थे ।[19] **महावंश** में कुवण्णा नामक यक्षिणि का वर्णन प्राप्त होता है जो सर्वप्रथम विजय नामक राजा से तपस्विनी के रूप में मिलती है, तदुपरान्त वह सोलह वर्षीय कन्या का रूप धारण कर लेती है ।[20] 'चेतिया' नामक यक्षिणि डूमरक्खा पर्वत पर एक अश्वा के रूप में विचरण करती थी ।[21]

उन्हें शक्तिशाली व अस्त्र-शस्त्रधारी भी दर्शाया गया है ।जैसे - वज्रपाणि, मोग्दरपाणि का उल्लेख प्राप्त होता है तथा यक्षों की उपलब्ध मूर्तियों में भी उन्हें मोग्दर आदि धारण किये हुए दर्शाया गया है ।

साथ ही उनके द्वारा उनकी बलि न मिलने पर अथवा क्रोधित होने पर शक्ति अथवा माया से नगर में महामारी फैलाने का वर्णन प्राप्त होता है ।[22] जैन-साहित्य के **उत्तराध्ययनसूत्र**[23] में भी वर्णित है कि यक्ष, मनुष्य-योनि में जन्म प्राप्त कर लेता है, तब उसके यक्ष-संबंध गुण निकल जाते हैं ।

उपर्युक्त वर्णनों में यक्षों को कुछ मायावी-सा दर्शाया गया है। वे असंभव से कार्यों को करने में सक्षम है । जैसे आकाश में स्थित होना, कोई भी स्वरूप धारण कर लेना, महामारी फैला देना अथवा अपनी माया से तूफान वा वर्षा ला देना तथा इसी प्रकार अन्य बहुत से वर्णनों से बौद्ध-जैन साहित्य भरा पड़ा है । ये सब वर्णन कुछ प्रतीकात्मक से प्रतीत होते हैं । ये संभव है कि ये सारे कार्य अथवा कथाएँ-सी तो निरंतर चलते ही रहते हैं प्राय: अंधविश्वास के कारण यक्षों को इनका कारण मान लिया जाता हो तथा ये भी संभव है कि ये वर्णन उनकी कुछ अन्य विशेषताओं की तरफ संकेत कर रहे हों । जैसा कि कहा है वे आकाश में स्थित हो सकते थे इससे प्रतीत होता है कि कि वज्रपाणि यक्ष या तो अपने का आकाशगामी वाहन से आकाश में स्थित हुआ होगा अथवा सम्भावित है कि वह किसी उच्च स्थान पर (पर्वत आदि) पर खड़ा हो, जिसकी अधिक ऊँचाई के कारण उसे 'आकाश' में स्थित कह दिया गया हो । इसी प्रकार उनके स्वरूप परिवर्तन के विषय में संभावना की जा सकती है कि प्रायश: वे किसी नट की भांति किसी की भी वेश-भूषा को धारण करने में कुशल थे । अन्यथा तो कोई भी अपने शारीरिक अंगों की आकृति को बार-बार कैसे बदल सकता है? अत: अनुमान किया जा सकता है कि 'नट' की भाँति रूप-परिवर्तन की कला में कुशल थे । इसी प्रकार

'महामारी' फैलाने के विषय में अनुमान किया जा सकता है कि वे कुछ होने पर नगर में अत्यन्त गंदगी फैला देते होंगे जिसके परिणामस्वरूप महामारी स्वत: फैल जाती होगी तथा तूफान व वर्षा लाने के विषय में कहा जा सकता है कि प्रायश: उनके पास ऐसे यंत्र विद्यमान हों जिनसे कि वे कृत्रिम वर्षा व तूफान आदि का वातावरण बना सकते हों । इन संभावनाओं की पुष्टि हेतु प्रमाण व साक्ष्यों का अभाव है अथवा ऐसे साक्ष्य प्रायश: कालगत हो चुके हैं जो इन तथ्यों की वास्तविकता को उजागर कर सकें, परंतु प्राप्त वर्णनों के अनुसार ऐसा ही प्रतीत होता है ।

अन्य जातियों से संबंध :

जैसा की पूर्व में भी कहा जा सकता है कि यक्ष एक प्रभावशाली जाति रही है । प्राचीन वैदिक-काल में उनकी पूजनीय अवस्था थी तदुपरान्त महाकाव्य-काल में भी उनका प्रभाव देखा जा सकता है तथा अवान्तर परवर्ती साहित्य में यक्ष अत्यन्त प्रभावशाली रूप में प्रकट होते हैं तथा सभी जातियों देव, दनव, गंधर्व, मनुश्य जाति से उनके संबंध रहे हैं । उनके मनुष्यों के साथ क्रूर स्वभावशील होने का बहुश: वर्णन हुआ है[24] तथा साथ ही उनके मनुष्यों के प्रति दयालु होने का भी वर्णन है ।[25]

जहाँ वैदिक-काल में इस जाति को देव आदि प्रमुख जातियों के मध्य सम्मान प्राप्त था वहीं उनके परवर्ती साहित्य में भी उनके देव जाति के साथ व मनुष्य जाति से भी सुसम्बन्ध विद्यमान रहे । वैदिक-काल में यखों के राजा कुबेर के उस काल की सबसे प्रभावशाली देव जाति के प्रमुख देवों शिव, इन्द्र आदि से मैत्री संबंध थे, वहीं बौद्ध-काल तक वे संबंध निरंतर चलते रहे तथा उस काल के सबसे प्रभावशाली व्यक्तित्व महात्मा बुद्ध के साथ भी वैश्रवण के सुसंबंध थे तथा उसके अनुयायी यक्षों के भी । कुबेर स्वयं कहते हैं कि कुछ यक्ष उनके बौद्ध अनुयायी हैं व कुछ नहीं । इसी प्रकार मानव जाति के प्रति कुछ यक्ष दयालु प्रवृत्ति के रहे है। व कुछ अत्यन्त क्रूर तथा वे मनुष्य मांस भक्षी रहे हैं ।[26]

बौद्ध-साहित्य के वर्णनों से प्रतीत होता है कि बौद्ध-धर्म का यक्ष जाति पर अत्यन्त प्रभाव पड़ा । अनेकश: बोधिसत्त्वों के द्वारा किसी भी यक्ष के हृदय-परिवर्तन का वर्णन प्राप्त होता है तथा यक्षों के उन बौद्ध भिक्षुओं के संरक्षक के रूप में स्थित होने के साक्ष्य भी उपलब्ध होते हैं । राजगृह की यक्षिणि हारिती इसका प्रमुख उदाहरण है जो परिवर्तन के उपरान्त संरक्षिका के रूप में प्रसिद्ध हुई।[27]

यक्ष-चैत्य (भवन) :

यक्षों के भवन, जिन्हें बौद्ध व जैन साहित्य में प्राय: चैत्य अथवा आयतन कहा गया है, वे नगर के बाहर, किसी उपवन, पर्वत अथवा किसी घाट पर होते थे (जैसे पुण्णभद्द व मोग्गरपाणि का आयतन) संयुक्तनिकाय[28] में राजगृह के समीप सूचिलोम यक्ष, **उत्तराध्ययनसूत्र**[29] में यक्ष के आयतन व मूर्ति का उल्लेख मिलता है । महावंश में तालाब के किनारे चित्तराज यक्ष के भवन[30] का तथा नगर के द्वार पर भवन के विषय में एक दासी जो पुन: जन्म धारण करके यक्षिणि बनती हैं[31], का वर्णन है । ये मन्दिर, भवन अथवा

आयतन अत्यन्त प्रसिद्ध व प्राचीन माने जाते थे । नगर के अन्दर का उदाहरण-कथासरत्सागर[32] में वर्णित मणिभद्र का चैत्य है तथा महल के अंदर भी इनके चैत्य होते थे जैसे महावंश में वर्णित यक्षिणी का चैत्य है।[33]

अब यह कहना कठिन है कि उनके ये भवन अथवा चैत्य निर्मित इमारतें ही थी । इनमें से कुछ तो निश्चित रूप से इमारतें थी, लेकिन कुछ केवल पवित्र वृक्ष का स्थान था । जैसे पुण्णभद्द का चैय (चैत्य) निश्चित रूप से निर्मित स्थान था जो एक पवित्र वृक्ष के नीचे था ।

महाकाव्यों में वर्णित कुछ आयतन निश्चित रूप से निर्मित स्थान थे जैसे मनु व कुमारस्वामी के अनुसार ये प्रतिमाएँ भारत की सबसे प्राचीन प्रतिमाएँ जानी जाती है ।[34]

जबकि शिल्पकला-कौशल से बनाए गए मंदिर तो कुषाणकाल से प्राप्त होते हैं तथा ये मंदिर इनसे पुरातन थे, प्रायशः इसी कारण से ये सुनिर्मित नहीं होते थे ।

चैत्य शब्द का अर्थ प्रायः एक पवित्र वृक्ष या वेदी सहित पवित्र वृक्ष ही लिया जाता था । जैसा की महाकाव्यों में भी चैत्य-वृक्षों को अत्यन्त पवित्र माना जता है तथा उन्हें कोई हानि न पहुँचाने को कहा जाता है क्योंकि ये देव, दानव, यक्ष आदि के निवास-स्थान होते हैं ।[35] बौद्ध साहित्य में भी ऐसे ही स्थलों पर बुद्ध को विश्राम करते दर्शाया गया है तथा 'भवनम्' का अर्थ भी मात्र एक पवित्र वृक्ष ही लिया जा सकता है ।

संयुक्तनिकाय में मणिभद्द के भवन को यक्ष चैत्य कहा गया है ।[36] इसी प्रकार मोग्दरपाणि का चैत्य भी उद्यान में स्थित था तथा वहाँ किसी निर्मित भवनके स्थान पर उसकी मूर्ति मात्र ही थी[37] तथा ऐसा प्रतीत होता है कि पुण्णभद्द व मणिभद्द के भवन अत्यन्त प्रसिद्ध थे तथा बाद के साहित्य में उनका वर्णन द्वारों व कक्षों से युक्त मंदिरों के रूप में मिलता है ।[38]

कुमारस्वामी के निरीक्षण उपरान्त हम कह सकते हैं कि कई स्थानों पर 'यक्ष-भवन' (बनावट रचना संबंधी) की रचना-शैलीबद्ध भवन (इमारत) थी ।[39] उनके आकार के अनुसार उनके दरवाजे, तोरण प्रतिमाएं तथा चबूतरे थे । उनके गुंबदाकार के मंदिर थे । सुरप्रिय जक्खायन आयतन का वर्णन सुंदर मंदिर के रूप में मिलता है ।[40] इसी प्रकार के आकार का वर्णन भरहुत में सुधामा-देव-सभा में मिलता है । छोटा गुम्बदाकार मन्दिर का अन्य उदाहरण साँची के अग्नि मंदिर में मिलता है । इस प्रकार ज्ञात होता है कि यक्षों के इमारत रूपी चैत्य भी होते थे ।

अयोध्या में हरिभद्र के **'आवश्यकटीका'** में जक्ख सुरप्पिअ के चैत्य का वर्णन था । उसकी प्रतिमा की प्रतिवर्ष लिपाई की जाती थी । यदि ऐसा न किया जाए तो वह लोगों में महामारी फैला देता था । अन्तगढ़ दासाओं में हरिणेगमेशी को पूजा स्वीकार करते दिखाया गया है ।[41]

वैशाली के संरक्षक यक्ष को आहुतियों, नृत्य-गान तथा वाद्य यंत्रों के वाद्य से भेंट दी जाती थी । इससे प्रतीत होता है कि मध्यकाल तक यक्षों ने प्रसिद्धि प्राप्त कर ली थी । इस कार्य में हम कुछ समान गुणों वाली सभ्यता को पाते हैं ।

औपपतिकसूत्र में पुण्णभद्द चैत्य के विषय में वर्णन मिलता है । इस प्रकार हमें यहाँ पर दोनों ही पालक व उनके द्वारा गृहित करने की छवियों का ज्ञान होता है तथा साथ ही साथ यह भी स्प्ष्ट हो जाता है कि उनके चैत्य द्वारों आदि युक्त इमारतें होती थी तथा उसकी मूर्ति प्राय: लकड़ी की थी जो गदा युक्त होती थी । यह नहीं कहा जा सकता है कि मूर्तियाँ यक्षों की नहीं है क्योंकि बाद के तथ्यों से यह पुष्ट हो जाता है । **'मोग्गरपाणि'** का अर्थ ही मुदग्र-धारण करने वाला है । यहाँ जक्ख को एक उग्रप्राणि के रूप में दर्शाया गया है यह भी ज्ञात नहीं है कि कहाँ तक क्रोध पर नियंत्रण रखना है व रूक जाना है ।

हिन्दू व बौद्ध साहित्य में यह देखा गया है कि इस प्रकार के चैत्य एक रेलिंग व दीवार के घेरे से युक्त होते हैं । बौद्ध साहित्य में अन्य इसी प्रकार के चैत्यों का वर्णन हुआ है । निम्नलिखित वर्णन है जो इसी प्रकार की संस्कृति से संबंधित है ।

1. वैशाली के वज्जियाँ लिच्छवियों के द्वारा बुद्ध को दिया गया वैशाली में स्थित चापाल का चैत्य ।[42]
2. युट्ढवन में स्थित सुपतिट्ठा चेतिय जहाँ बुद्ध अपनी पहली यात्रा में रूके थे तथ वह बरगद वृक्ष के देवता सुपतिट्ठा का स्थान था ।[43]
3. मल्लों से संबंधित सालवृक्ष का उपवन, जहाँ परिनिब्बाण से पूर्व रूके थे, यहाँ पर मंच था जिस पर बुद्ध लेटे थे, यह बलि अर्पित करने का स्थान प्रतीत होता है ।[44]
4. वज्जियों लिच्छवि काचैत्य जिसका पहले भी बुद्ध के संदर्भ में उल्लेख हो चुका है[45], में जब बुद्ध वहाँ के वासियों के लिए हितोपदेश कर रहे थे तब उन मंचों की प्रयोगहीनता हो चुकी थी ।[46] वैशाली के सारदन्दा चैत्य में जहाँ बुद्ध बैठे थे, तब उन्होंने कहा कि यह विहार पूर्व में सारदान्दा यक्ख का निवास स्थान रहा है ।[47]

विपाकसूत्र[48] में पूर्णभद्र के पुरातन चैत्य का वर्णन प्राप्त होता है। यह चैत्य चम्पा नगरी के ईशानकोण में स्थित उद्यान में कहा है कि इसमें महावीर स्वामी को शिष्यों सहित विहार करते हुए तथा उपदेश हेतु विराजमान होत दर्शाया गया है । कुमारस्वामी के अनुसार यह स्थान पूर्ववर्ती पार्श्वनाथ का भी रहा है, परंतु महावीर के काल में उनकी कोई पूजा नहीं होती थी, अत: यह मक्ख भवन ही रहा होगा । धर्मात्मा वानियागाम का पुत्र अपने अनुयायियों सहित यहाँ पुरातन देवों को बलि आदि अर्पित करने की घोषणा करता है प्रायश: इनमें यक्ख भी सम्मिलित रहा हो ।[49]

इसी प्रकार के अन्य वर्णन भी प्राप्त होते है यथा - मृगाग्राम नामक नगर के ईशानकोण में फल-पुष्पादि से युक्त चन्दण-पादप नामक एक रमणीय उद्यान था । उस उद्यान में सुधर्मा नामक यक्ष का एक पुरातन यक्षायतन था ।[50] जैन-उल्लेखों के अनुसार रोहतक में धरण नामक यक्ष का भवन स्थान था तथा महामयुरी सूची के अनुसार यह 'कुमार' नामक यक्ष का स्थान था । यह भी सम्भव है कि यह एक ही यक्ष के दो नाम हों तथा हिन्दुओं के लिए पवित्र है ।[51]

इन उपर्युक्त वर्णनों से ऐसा प्रतीत होता है कि ये यक्ष चैत्य प्रारंभ में प्राय: पवित्र वेदी से युक्त वृक्ष ही होते थे जो प्राय: उद्यान व अन्य किसी विहार स्थल में स्थित होते थे । इसके उपरान्त यक्ष मूर्तियों का वर्णन भी प्राप्त होता है तथा यक्षायतनों के निर्मित-रूप में होने के वर्णन भी प्राप्त होते हैं । ऐसा प्रतीत होताहै कि प्रारंभ में चैत्य मात्र वृक्षादि ही होते थे तथा कालान्तर में समय के प्रभाव से यक्ष-मूर्ति व भवन आदि का निर्माण होने लगा ।यही चैत्य बुद्ध व महावीर काल में उनके विहार स्थल बन गए ऐसा उपर्युक्त वर्णनों से प्रमाणित होता है ।यह सामान्यतया समझने योग्य है कि पुरातन विश्वास अथवा परम्पराएँ समय के अनुसार होने वाले परिवर्तन के साथ नूतन समाज में निरंतर जीवन्त रहते हैं तथा यह सम्पूर्ण संभवना रहती है कि वे पुरातन परम्पराएं नया रूप धारण कर लेती हैं तथा उनमें उस वास्तविकता का स्वरूप भी समय के अनुसार परिवर्तन के कारण अत्यन्त सूक्ष्म रूप में विद्यमान रहता है ।ये परम्पराएं विभिन्न प्रकारों से बदलती रहती हैं, ये यक्ष-चैत्य भी इसी प्रकार के परिवर्तनों के उदाहरण के रूप में हमें प्राप्त होते हैं ।

यक्ष-पूजा :

बौद्ध कालमें यक्षपूजा अत्यधिक की जाती थी । जैसा कि वर्णन हो चुका है कि यक्ष मनुष्यों के प्रति दयालु व क्रूर दोनों ही स्वभाव रखते थे (तथा वैदिक काल में उपनिषदों आदि में भी यक्ष बलि अर्पित की जाती थी) बौद्ध साहित्य में ऐसा प्रतीत होता है कि उनका यह अत्यन्त क्रूर स्वभाव भी उनकी पूजा का कारण बना । क्रूर स्वभाव वाले यक्षों के प्रति उनसे भय उत्पन्न होने पर सामान्यजन उनको प्रसन्न रखने के लिए बलि व पूजा आदि अर्पित करता था तथा दयालु प्रवृत्ति के यक्षों के प्रति श्रद्धा अर्पित करने के लिए उनकी पूजा होने लगी थी । बौद्ध-साहित्य में ऐसे अनेक साक्ष्य प्राप्त होते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि यक्षों की पूजा सामान्यजन में प्रचलित थी ।

इसके अतिरिक्त जातक-युग में धन की लालसा इतनी बढ़ गई थी कि लोग धन के लिए यक्ष और नाग की पूजा करने गये थे । प्रत्येक व्यक्ति चाहता था कि वह किसी देवता की दया से धन प्राप्त कर ले ।[52] यक्ष या कुबेर को धन का देवता माना जाता है और नाग भी धनदाता के नाम से ही विख्यात है ।

यक्ष मूर्ति, मंदिरों को देखकर गंध, पुष्प व वस्त्र आदि चढ़ाया जाता था ।[53]

अन्तकृद्दशा-सूत्र में वर्णन है कि अज्जुणए (अर्जुन) नामक माली प्रतिदिन अपने व्यापार से पूर्व मोग्गर-पाणि यक्ख के यक्खाययन में बहुत से पुष्पों से उसकी पूजा करता था ।[54] इसी प्रकार **उत्तराध्ययनसूत्र** में हिरण्यकेशी नामक अध्याय में यक्ष-पूजा का वर्णन प्राप्त होता है ।

ललितविस्तर में वर्णन है कि राजा शुद्धोधन कुमार सिद्धार्थ के उपनयन संस्कार के समय उन्हें अपने देवकुल में ले जाते हैं तथा देव प्रतिमाओं व कुबेर, वैश्रवण व लोकपाल की प्रतिमाओं के समक्ष भी प्रणाम करते व सिद्धार्थ का प्रणाम करवाते हैं ।[55] इसके अतिरिक्त कुमारस्वामी ने मगध के नन्दवर्धन नगर के नन्दी व वर्धन युगल यक्षों का वर्णन किया है तथा उनके अनुसार वे इस नगर के पूज्य देव थे ।[56]

जैन-तमिल-साहित्य में **जीवक-चिन्तामणि**[57] में वर्णन है कि जीवन नाम का व्यक्ति सुतांजन यक्ष के लिए मंदिर बनवाता है तथा उसकी मूर्ति की स्थापना करता है तथा एक गाँव भी देता है ताकि उसको प्रतिदिन मंदिर में बलि प्राप्त होती रहे । इसके अतिरिक्त वह यक्ष के जीवन कथा से संबंधित नाटक भी तैयार करता है ताकि गाँव वाले उसे विषय मं जान सकें तथा उस देव को प्रसन्न करने के लिए एक सुअवसर पर उसका मंचन भी करता है । वैशाली के संरक्षक-देवता की भी नृत्य संगीत तथा वाद्य-यंत्रों से पूजा की जाती थी ।

विपाकसूत्र में भी सन्तानोत्पत्ति हेतु यक्ष-पूजा के वर्णन हमें प्राप्त होते हैं । गंगादत्ता द्वारा पुत्र प्राप्ति हेतु उम्बरदत्त यक्ष के मंदिर में छः प्रकार की सुराआदि पदार्थ तथा बहुत-सी पुष्पादिरूप पूजा सामग्री लेकर यक्षपूजा का वर्णन मिलता है ।[58] इस प्रकार शौरिक यक्ष की मन्नत मानने से उपलबध होने वाले पुत्र शौरिकदत्तं का वर्णन भी प्राप्त होता है ।[59] इसके अतिरिक्त विपाकसूत्र में ही कृतवनमालप्रिय यक्ष का वर्णन प्राप्त होता है । इस यक्ष का स्थान, हरित्तीशीर्ष नामक नगर के बाहर ईशान कोण में पुष्पकण्डक नामक विशाल रमणीय उद्यान में था । उस में ही इस यक्ष का स्थान था जो बड़ा ही रमणीय व दिव्यता प्रधान था।[60] इस यक्ष के विषय में वर्णन मिलता है कि इसकी वाणी सत्यरूप होती थी, जो वह कहता था निष्फल नहीं जाता था, अतः उसका स्थान सत्य कहा गया है । कृतवनमालप्रिय यक्ष के विषय में प्रसिद्ध था कि उसके स्थान पर मांगी गई इच्छाएं पूर्ण हो जाती थी तथा वह हजारों यज्ञों का हिस्सा प्राप्त किया करता था । इसी कारण वहाँ जाकर बहुत से लोग उस यक्ष के यक्षातन की पूजा किया करते थे ।[61]

मथुरा में देवनिशिया के सामने हुण्डीका नामक यक्ष का मंदिर है, जो पहले एक चोर था किंतु वह फांसी के समय 'नमस्कार' को बुदबुदाता है, जिस कारण से वह अगले जन्म में कुम्भधर यक्ष के रूप में जन्म धारण करता है तथा जहाँ जन तीर्थस्थल के रूप में आते थे । यक्ष व वृक्ष-पूजा मथुरा में भी जुड़ी थी इसलिए यक्षों की वृक्षों के नीचे पूजा की परम्परा, जैन व हिन्दू स्रोतों, दोनों से ही संबंधिज थी[62] तथा यक्षों की पूज के साथ नाग-पूजा भी प्रचलित थी । धन्य की पत्नी भद्रा उनकी संतान प्राप्ति हेतु उपासना करती थी । कुछ स्रोतों से ज्ञात होता है कि साकेत के उत्तर-पूर्व में नाग-घर थे । पद्मावती इस आयतन में नाग-बलि अर्पित करती थी। जे.पी. शर्मा के अनुसार ताम्रलिप्ति के मुख्यमार्ग पर नागघर में खुशबूदार धूप जलाई जाती थी । जैन-उल्लेखों के अनुसार, खासतौर पर कुमारियाँ मनावांछित पति-प्राप्ति के लिए नागों की पूजा करती थी ।[63]

मथुरा नाग-पूजा का मुख्य केंद्र था तथा वहां से नागों की कई मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई । अहिच्छत्रा जो वर्तमान में रामनगर है, वह भी नागों से संबंधित रहा है तथा वहां नाग राजा धरण ने 24वें तीर्थंकर पार्श्व की उसकी तपस्या के समय उस पर अपने मुंह से चंदोवा तानकर गर्मी से उसकी रक्षा की थी । जैन-उल्लेखों में ऐसी कई मूर्तियों व आयतनों का वर्णन हुआ है जो नाग यक्ष, रूद्र आदि से संबंधित रहे हैं तथा आज भी कई गाँव व शहरों में इनका अस्तित्व दिखाई पड़ता है । राजगृह का प्रसिद्धि मणिनाग की पूजा का स्थान मणियार मठ[64] की खुदाई से प्राप्त हुआ है । यह ध्यातव्य है कि जैन

ग्रंथों में मथुरा के प्राचीन सुपार्श्व स्तूप को पार्श्व कहते हैं जो धरण यक्ष से संबंधित भी है ।[65]

जैन साहित्य के अनुशीलन के आधार पर कहा जा सकता है कि इस काल में यक्ष-जाति का प्रभाव जन-सामान्य में पहले की अपेक्षा बढ़ चुका था । महाभारत व रामायण काल में जिस यक्ष जाति को दुर्गम स्थलों का निवासी कहा गया है, अब वही यक्ष जाति सामान्य समाज में स्थान पा चुकी थी तथा मानव जाति के नगरों, ग्रामों, उद्यानों, सरोवरों आदि के संरक्षकों के रूप में विद्यमान थी तथा साथ ही उनके विषय में विभिन्न प्रकार की अनेक धारणाएँ प्रचलित हो चुकी थी । यह जाति दुर्गम-पर्वतीय-स्थलों से उतरकर सामान्य जन के बीच ही विद्यमान थी परंतु फिर भी उन्हें अमानुष कहकर उन्हें मनुष्यजाति से भिन्न ही बताया है, जहां उनके संरक्षक के रूप में वर्णन प्राप्त होते हैं, वहीं भक्षक के रूप मं भी वे विद्यमान हैं । उन्हें प्रायः नरभक्षी ही दर्शाया गया है । कुछ यक्ष स्वभावतः ही संरक्षक थे, तो कुछ अत्यन्त क्रूर थे । वैश्रवण के आश्रय में रहने वाले यक्ष तो संरक्षक के रूप में विद्यमान थे परंतु कुछ यक्ष स्वच्छन्द रूप से विचरण करते थे, जो वैश्रवण का कहना नहीं मानते थे तथा वे ही समाज को हानि पहुँचाते थे। इस प्रकार यक्ष-समाज में विभाजन-सा प्राप्त होता है । इसके उपरान्त कुछ यक्ष बुद्ध के प्रभाव से परिवर्तित हो जाते हैं तथा मनुष्य-जाति के पूजित संरक्षक भी बन जाते हैं।

यहाँ यक्षों के वृक्ष-देवता भी कहा गया है तथा संतान-प्राप्ति हेतु उनसे अनेक प्रार्थनाएं व उनकी पूजा की जाती थी । इस काल में यक्ष्ज्ञ-पूजा सामान्तया अत्यन्त बढ़ गई थी तथा साथ ही उन पर बुद्ध का बढ़ता प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है ।

किन्तु एक विशिष्ट एवं ध्यातव्य व विचारणीय तथ्य यह है कि हालांकि इस काल में यक्ष जाति व उनकी परम्पराएं एवं पूजा-पद्धति अथवा उनका प्रभाव समाज में पूर्वकाल की अपेक्षा अत्यन्त बढ़ गया था, परंतु इन सब वर्णनों के विश्लेषण से ऐसा प्रतीत होता है कि इस काल तक आते-आते उनकी वो गुणवत्ता, सम्मानजनक स्थिति एवं उनकी उत्तम चारित्रिक विशेषताएँ, संक्षेप में कहें तो उनकी संस्कृति का वो उच्चतम-स्तर, जो वैदिक, रामायण, महाभारत काल में दृष्टिगोचर होता है, वह पूर्व की अपेक्षा कम हो गया तथा जिसके कारण इस काल में उनकी संस्कृति के ह्रास के बीज कहीं न कहीं सूक्ष्म रूप से यहां से आरंभ हो चुके थे।

1. J. P. Sharma : Jain Yakshas, p. 54
2. तत्त्वार्थ-भाष्य (रत्लाम प्रकाशन), पृ॰ 49
3. Shah, U. P., JOI. Vol. III. p. 60
4. नायाधम्मकहाओ, (IX.89.88) : पुरात्थिमिल्ले वणसं । सेलगस्स जक्खस्स जक्खायणे सेलए नामं आसरूवधारे जक्खे परिवसइ ॥
5. Shah. U. P. JOI, Vol. III, p. 58-59
6. Comarswamay : History of Indian and Indonesian Art, New York, 1965, fig 573, 74, 81;
7. Ibid, p. 17
8. Chanda, R. P. : Four Ancient Yaksha Statues, Journal of the Department of Lecturs, Vol. IV, Calcutta, 1921
9. U. P. Shah in JOI Vol, III, 1953, p. 61
10. स्थानांगसूत्र, स्था-9, सू-35 पर सुधा टीका..तदनन्तरं तत्पुण्यप्रभावात पूर्णभद्रमणिभद्राभिधानौ द्वौ देवौ क्रमेण दक्षिणोत्तरनिकायेन्द्रौ सेनाकर्म-सैन्यकार्यं शत्रुवशीकरणरूपं व्यापारं करिष्यत: ।
11. अम्बष्ठसुत्त, 2
12. A Dictionary of Hinduism, p. 345
13. जातक, प्रथम खण्ड, मंगलबुद्धकथा, पृ॰ 93
14. वही, अप्पणककथा, पृ॰ 177
15. जातक प्रथम खण्ड, देवधम्मजातक, पृ॰ 213 एवं द्र॰ खदिरंगारजातक, पृ॰ 345
16. वही, तेजपत्तजातक, पृ॰ 559-560
17. जातकमाला, मत्स्यजातकम् एवं विश्वन्तरजातकम्, श्लोक, 9-10, पृ॰ 158
18. दीघनिकाय, सीलक्खन्धवग्गो, पृ॰ 103
19. Mahalaksekera : Dictionary of Pali Proper Names, p. 676
20. महावंश VII. 9-39
21. वही, X. 53&63
22. महावंश XXXVI (82-90)
23. उत्तराध्ययनसूत्र, III. 14-18 : विसालिसेहीं सीलेहिं जक्खा उतर-उत्तरा ।
महासुक्का व दिप्पन्ता मन्नन्ता अपुणच्चवं ॥
.....अभिजाए जसोबले ॥
24. द्र॰ दीघनिकाय, पायासिराजञ्ञसूत्त, पृ॰ 566, मैत्रीबलजातकम् ।
25. जातकमाला, विश्वन्तरजातकम्, पृ॰ 98
26. दीर्घनिकाय, पाथिकवग्गो, आटानाटियसूत्र, पृ॰ 748-748
27. महावंश, XII. 21
28. संयुक्तनिकाय, यक्ख सुत्त (Kindred saying, I) पृ॰ 264
29. उत्तराध्ययनसूत्र, अध्याय XII
30. महावंश, अध्याय 10, 82-84
31. वही, अध्याय 10, 82-84

32. कथासरितसागर, अध्याय 13
33. द्र० महावंश, अध्याय 10
34. Coomarswamy, A.K. : Yaksas, p. 18
35. महाभारत 12, 69.39-40 :

    सर्वेषां क्षुद्रवृक्षाणां चैत्यवृक्षान्विवर्जयेत ॥

    प्रवृद्धानां च वृक्षाणां शाखाः प्रच्छेदयेत्तथा ।

    चैत्यानां सर्वथां वर्ज्यमपि पत्रस्य पातनम् ॥
36. संयुक्तनिकाय, यक्खसुत्त, 4
37. Barnett : Antagado-Dasao, p. 67, 69-71
38. कथासरित्सागर, 13
39. Coomarswamy, A. K. : Yaksas, P. I., p. 18
40. Barnett : Antago-Dasao, p. 13, n. 5
41. Ibid, . 67, 69-70
42. Watters, on Youan-Chwang, II, 78
43. Watters, Ibid, IV. 147
44. द्र० अंगुत्तरनिकाय, महापरिनिर्वाणसुत्त
45. अंगुत्तरनिकाय, महापरिनिर्वाणसुत्त,

    The Book of the Gradual Sayings IV,p. 10-11
46. द्र० सुमंगलविलासिनी, महापरिनिब्बानसुत्रवण्णना, पाटलिपुत्र नागरमापदवण्णना
47. Hoernle, Uvasagadasao, II, p. 2
48. विपाकसूत्र, प्रथम अध्याय, (आत्मज्ञानविनोदिनी टीका सहित), पृ० 1 : तेणं कालेणं तेणं समएणं चम्पा णामं णयरी होत्था । वण्णओ। पुण्णभद्दे चेहए । वण्णओ । तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी अज्ज सुहम्मे णामं अणगारे जाई संपन्ने, वण्णओ ।
49. Coomarswamy, A.K. : Yaksas, p. 24
50. विपाकसूत्र, प्रथम अध्याय, पृ० 22
51. J. P. Sharma : Jain Yaksha, p. 61
52. वेदब्भ जातक-48, द्र० कंचनक्खन्धजातक
53. Coomarswamy A. K. : Yaksas, P.I., p. 27
54. द्र० अन्तकृद्दशासूत्र, षष्ठम वर्ग, तृतीय अध्याय
55. ललितविस्तर, देवकुलोपनयनपरिवर्तो नामक अष्टम अध्याय ।
56. Coomarswamy. A. K. : Yaksas, p. 11-12
57. Vinson, J. : Legends Bouddhistes of Djainas, Paris, 1900, p. 43
58. विपाकसूत्र, प्रथम श्रुतस्कन्ध, सप्तम अध्याय, पृ० 409-410
59. वही, अष्टम अध्याय, पृ० 447

60. विपाकसूत्र, द्वितीय श्रुतस्कन्ध, प्रथम अध्याय, पृ॰ 55
61. विपाकसूत्र, "तत्यणं कयवणमालपियस्य जक्खस्य जक्खायतणे होत्था, दिव्वे॰ । पर आत्मज्ञानविनोदनी टीका, पृ॰ 564
62. CF. Shah, U. P. of cit. pp. 68-69
63. J. P. Sharma : Jain Yakshas, p. 65
64. Cf. Vogel, J. PH. Indian Serpennt Lore; Malalaksekera : Pali Dictionary, 1938, II. p. 675
65. Shah U. P. Op. Cit., p. 69 and J. P. Sharma : Jain Yakshas, pp. 65-66